

ही धर्म सम्पादन करने में महान् क्लेश उठाना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान समय में सबसे ज्यादा जो स्त्री और दलित विमर्श चर्चा के केन्द्र में रहता है तथा समय-समय विवाद में भी रहता है। उन्हीं दोनों समुदायों की चर्चा हजारों वर्ष पूर्व लिखे गये 'विष्णु पुराण' भी करता है। और साथ ही इस बात की घोषणा भी कर देता है कि 'कलियुग' में दलित और स्त्री जाति ही श्रेष्ठ रहेगी और सभी प्रकार के पापकर्मों और बंधनों से स्वतः मुक्त रहेंगी इनको अपनी मुक्ति के किसी बन्धन को तोड़ने या आन्दोलन करने की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि जिसके लिए किसी भी प्रकार के नियम का बंधन बनाया ही नहीं गया उन्हें भला तोड़ने की आवश्यकता ही क्या है ? भारतीय ज्ञान परम्परा प्रारम्भ से ही समृद्धशाली और कल्याणकारी रही है किन्तु सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने उस पूरी समृद्ध परम्परा को हाशिये पर डाल दिया था या उन्हें मिटाने की कोशिश की थी। वह परम्परा अब भी अंधेरो को हटाकर रौशनी देने में समर्थ है। यह ठीक है कि हमें दुनिया भर के साहित्य से कुछ न कुछ प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिए लेकिन अपनी विरासत और परम्परा से आँखें मोड़कर नहीं। क्योंकि जिस भारतीय वाग्मय ने एक दौर में पूरी दुनिया को ज्ञान दिया था, जिसके कारण भारत को विश्वगुरु जैसी उपाधि प्राप्त थी तो क्या आज वही वाङ्मय पुनः ज्ञान का आधार नहीं बन सकता? आवश्यकता इस बात कि है कि भारतीय ज्ञान परम्परा से समस्त वाङ्मय को विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक के पाठ्यक्रम में शामिल करने की आवश्यकता है ताकि युवा पीढ़ी बिना किसी भेदभाव के उसका अध्ययन कर सके और उस पर अपने विचार खुलकर प्रस्तुत कर सके। गलती यह होती है कि देश में कुछ लोग ही उसका प्रचार-प्रसार करते नजर आते हैं और धीरे-धीरे वे भी राजनीतिक मुद्दों का हिस्सा बन जाते हैं और ज्ञान परम्परा पुनः हाशिये पर चली जाती है, इसलिए अगर वह परम्परा पाठ्यक्रम का हिस्सा बनेगी तो सम्भवतः उस पर राजनीति कम होगी क्योंकि राजनीति में ज्ञान के विषयों के लिए ज्यादा अवकाश होता नहीं है और उसका सीधा फायदा देश के युवा पीढ़ी को मिल जायेगा। और इस भाव से नहीं कि हमें विश्वगुरु ही बनना है। पहले अपना घर तो रौशन कर लें तब चिराग बाहर जलाने का प्रयास करना होगा यानि पहले अपने मन के भीतर का अंधकार मिटाये तब संसार को प्रकाशवान बनाने का प्रयत्न करें। अन्धकार से प्रकाश की ओर मार्ग प्रशस्त करने का साधन है भारतीय ज्ञान परम्परा जिसका सम्मान करना हम लोगों को पहले सिखना होगा।

संत काव्य परंपरा में संघर्ष -चेतना एवं जीवन-मूल्य

डॉ जितेंद्र गौतम

सहायक प्राध्यापक (हिंदी)

पी एम कॉलेज ऑफ एक्सीलेस, शिवपुरी

सारांश-मध्यकालीन भारतीय समाज में संत काव्य परंपरा ने धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन का सूत्रपात किया। यह शोध पत्र संत कवियों की रचनाओं में निहित संघर्ष-चेतना और जीवन-मूल्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। कबीर, रैदास, दादू, नानक, मीरा आदि संत कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त जाति-प्रथा, धार्मिक आडंबर, रूढ़िवादिता और सामाजिक विषमता के विरुद्ध प्रखर संघर्ष किया। उनकी वाणी में मानवतावाद, समानता, सत्य, प्रेम, करुणा और आत्मसाक्षात्कार जैसे शाश्वत जीवन-मूल्यों की स्थापना मिलती है। यह शोध संतों के काव्य में अभिव्यक्त सामाजिक प्रतिरोध, धार्मिक सुधारवाद और नैतिक मूल्यों की प्रासंगिकता को समकालीन संदर्भ में रेखांकित करता है। संत काव्य केवल साहित्यिक उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना का एक सशक्त माध्यम रहा है।

बीज शब्द: संत काव्य, संघर्ष-चेतना, जीवन-मूल्य, कबीर, समाजसुधार, धार्मिक आडंबर, मानवतावाद, समानता, भक्ति आंदोलन

प्रस्तावना-भारतीय साहित्य के इतिहास में मध्यकाल एक विशेष महत्व रखता है, जहाँ भक्तिकाल की निर्गुण धारा के अंतर्गत संत काव्य परंपरा ने समाज को नवीन दिशा प्रदान की। चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य विकसित यह काव्यधारा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक आंदोलन नहीं थी, अपितु यह एक व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक क्रांति का प्रतिनिधित्व करती थी। तत्कालीन समाज अनेक विसंगतियों से ग्रस्त था। एक ओर जहाँ कर्मकांडों, आडंबरों और बाह्याचारों का बोलबाला था, वहीं दूसरी ओर जाति-व्यवस्था की कठोरता, छुआछूत, लिंग-भेद और धार्मिक कट्टरता ने समाज को विखंडित कर दिया था। इस्लामी शासन के प्रभाव और हिंदू-मुस्लिम संघर्ष ने सामाजिक तनाव को और गहरा किया था। ऐसे विषम परिवेश में संत कवियों ने अपनी वाणी से जनमानस को झकझोरा और एक नवीन जीवन-दृष्टि का प्रतिपादन किया।

संत कवियों की विशेषता यह रही कि वे समाज के निचले तबकों से आए थे। कबीर जुलाहे थे, रैदास चर्मकार, सेना नाई, धन्ना जाट और पीपा राजपूत। इनकी सामाजिक पृष्ठभूमि ने इन्हें जीवन की कठोर वास्तविकताओं से परिचित कराया और इनके काव्य में यथार्थवादी दृष्टिकोण की प्रधानता रही। संत काव्य में संघर्ष-चेतना का स्वर प्रमुख है, जो समाज की विद्रूपताओं के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। संत साहित्य का महत्व इसलिए भी है कि इसने लोकभाषा को साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। संस्कृत और फारसी के वर्चस्व के युग में संतों ने सधुक्कड़ी, अवधी, ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी आदि लोकभाषाओं में अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त कीं, जिससे सामान्य जन तक उनका संदेश पहुँचा।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

संत काव्य परंपरा में अभिव्यक्त संघर्ष-चेतना के विविध आयामों की पहचान और विश्लेषण करना। यह संघर्ष धार्मिक, सामाजिक,

सांस्कृतिक और वैयक्तिक स्तरों पर किस प्रकार प्रकट होता है, इसका अध्ययन करना।

संत कवियों द्वारा प्रतिपादित जीवन-मूल्यों का गहन अध्ययन प्रस्तुत करना। इन मूल्यों में मानवतावाद, समानता, सत्य, प्रेम, करुणा, सहिष्णुता और आत्मसाक्षात्कार जैसे तत्वों की व्याख्या करना।

संत काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता को समकालीन संदर्भ में रेखांकित करना। आज के युग में भी संत साहित्य के संदेश कितने प्रासंगिक हैं, इसका मूल्यांकन करना।

संत काव्य के माध्यम से मध्यकालीन समाज की विसंगतियों और उनके प्रति संतों की प्रतिक्रिया का ऐतिहासिक-सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत करना।

संत काव्य परंपरा के साहित्यिक और सांस्कृतिक योगदान को रेखांकित करना।

मूल लेख

संत काव्य परंपरा का परिचय

संत काव्य परंपरा भक्तिकाल की निर्गुण धारा का प्रतिनिधित्व करती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में इसे प्रेममार्गी और ज्ञानमार्गी शाखाओं में विभाजित किया है। संत काव्य परंपरा मुख्यतः ज्ञानमार्गी शाखा के अंतर्गत आती है, जहाँ ब्रह्म के निर्गुण-निराकार स्वरूप की उपासना की जाती है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'संत काव्य मूलतः सामाजिक समन्वय और धार्मिक सहिष्णुता का काव्य है' (1)। संतों ने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों के बाह्य आडंबरों का विरोध किया और सार्वभौमिक मानवतावाद का संदेश दिया। इस परंपरा के प्रमुख कवियों में कबीर, नानक, रैदास, दादू दयाल, सुंदरदास, मल्लूकदास आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

संत काव्य में संघर्ष-चेतना के आयाम

धार्मिक आडंबर के विरुद्ध संघर्ष

संत कवियों का सबसे प्रबल संघर्ष धार्मिक कर्मकांडों और आडंबरों के विरुद्ध था। तत्कालीन समाज में पूजा-पाठ, तीर्थाटन, व्रत-उपवास, यज्ञ-हवन आदि को ही धर्म का प्रमुख आधार माना जाता था। संतों ने इन बाह्य क्रियाओं को निरर्थक बताते हुए आंतरिक शुद्धता और सच्चे भक्तिभाव पर बल दिया।

कबीर की वाणी इस संदर्भ में अत्यंत तीक्ष्ण और प्रभावशाली है। वे कहते हैं, 'कांकर पाथर जोरि के मस्जिद लई बनाय / ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहरा हुआ खुदाय'। इसी प्रकार हिंदू धर्म के मूर्तिपूजा के संबंध में वे कहते हैं, 'पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजें पहार / याते तो चाकी भली पीस खाय संसार'। विद्यानिवास मिश्र ने संकेत किया है कि 'कबीर का काव्य धार्मिक पाखंड के विरुद्ध एक सशक्त अभियान था' (2)। गुरु नानक ने भी कर्मकांडों की निरर्थकता पर प्रहार किया। उन्होंने कहा कि वास्तविक तीर्थ मन की पवित्रता है, बाहरी स्नान से आत्मा शुद्ध नहीं होती। रैदास ने भी इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा कि ब्राह्मणों के कर्मकांड केवल ढोंग हैं। संत कवि बाहरी कर्मकांडों को व्यर्थ मानते थे और अंतःकरण की शुद्धि पर बल देते थे। कबीरदास का पद:-

“कांकर-पत्थर जोरि कै, मस्जिद लई चुनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥”

यह दोहा धार्मिक आडंबर पर तीखा व्यंग्य है। कबीर कहते हैं कि पत्थरों से मस्जिद बनाकर मुल्ला अजान देता है, मानो ईश्वर बहरा हो। इससे वे मूर्ति-मंदिर और मस्जिद दोनों के बाह्य आडंबर का खंडन करते हैं। संघर्ष चेतना यहां धार्मिक स्वार्थी वर्गों (मुल्ला-पंडित) के शोषण के विरुद्ध है, जो जनता को भय और कर्मकांडों में बांधे रखते हैं। कबीर सच्ची भक्ति को हृदय में बसाने का संदेश देते हैं, जो सार्वभौमिक मानव धर्म की ओर

इशारा करती है।

“पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजें पहार।

या ते तो चाकी भली, पीस खाय संसार॥”

मूर्तिपूजा की तर्कहीनता पर करारा प्रहार। यदि पत्थर में ईश्वर है तो पहाड़ की पूजा क्यों नहीं? चक्की तो कम से कम संसार का पेट भरती है। यह व्यंग्य हिंदू मूर्तिपूजा पर है, परंतु व्यापक रूप से सभी बाहरी पूजा-पद्धतियों पर। संघर्ष यहां अंधविश्वास और पाखंड से है, जो सच्चे आध्यात्म को रोकता है।

“पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥”

शास्त्रों के अंधानुकरण का विरोध। केवल पुस्तकीय ज्ञान से कोई पंडित नहीं बनता; प्रेम के ढाई अक्षर ही सच्चा ज्ञान हैं। यह संघर्ष पंडित वर्ग के एकाधिकार के विरुद्ध है, जो जनता को ज्ञान से वंचित रखते हैं। कबीर ज्ञान को लोकतांत्रिक बनाते हैं।

“तीरथ बरत करै जो कूठा, हरि की भगति बिना सब जूठा॥”

तीर्थ-व्रत को भक्ति के बिना व्यर्थ बताते हैं। संघर्ष बाहरी कर्मकांडों से है, जो सच्ची भक्ति को ढकते हैं। रैदास अंतर्मुखी भक्ति की ओर ले जाते हैं।

“जप तप संजम नेम न कोई, बिना प्रेम भगति नहिं सोई॥”

जप-तप व्यर्थ हैं यदि प्रेम नहीं। यह प्रेम को भक्ति का आधार बनाता है, कर्मकांडों का खंडन करता है।

“नानक कहै सुनहु रे लोग, हरि भगति बिना सब जग फूका॥”

बिना भक्ति सब व्यर्थ। नानक दिखावे की धार्मिकता पर प्रहार करते हैं।

जाति-व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष

मध्यकालीन समाज में जाति-प्रथा अपने सबसे कठोर रूप में विद्यमान थी। ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने समाज को चार वर्णों में विभाजित कर दिया था और शूद्रों को अधिकारहीन बना दिया था। संत कवियों ने इस व्यवस्था के विरुद्ध खुलकर आवाज उठाई।

रैदास स्वयं चर्मकार जाति से थे और उन्हें सामाजिक अपमान का सामना करना पड़ा। उन्होंने अपने काव्य में जाति-प्रथा की कटु आलोचना की। वे कहते हैं, 'जाति-पाँति पूछे नहीं कोई / हरि को भजे सो हरि का होई'। उनकी यह उक्ति समानता के सिद्धांत की स्थापना करती है।

कबीर ने भी जाति-भेद को निरर्थक बताया। वे कहते हैं, 'जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान / मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान'। श्यामसुंदर दास ने उल्लेख किया है कि 'संत काव्य में जातिगत समानता का स्वर मुखर रूप से प्रकट हुआ' (3)।

गुरु नानक ने सिख धर्म की स्थापना करते हुए जाति-प्रथा का पूर्णतः उन्मूलन किया और 'लंगर' की व्यवस्था के माध्यम से सामाजिक समानता का व्यावहारिक प्रदर्शन किया। सभी जातियों के लोग एक साथ बैठकर भोजन करते थे, जो उस युग में क्रांतिकारी कदम था।

लिंग-भेद के विरुद्ध संघर्ष

मध्यकालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। उन्हें शिक्षा, संपत्ति और सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा जाता था। संत परंपरा में मीराबाई जैसी महिला संत ने अपने काव्य और जीवन से पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती दी।

मीरा ने पारिवारिक और सामाजिक बंधनों को तोड़कर अपनी भक्ति के मार्ग को चुना। उन्होंने लिखा, 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई / जा के सिर मार मुकुट मेरो पति सोई'। उनका यह साहस तत्कालीन समाज में स्त्री-स्वतंत्रता का प्रतीक बन गया। नगेंद्र ने लिखा है कि 'मीरा का विद्रोह केवल व्यक्तिगत नहीं था, वह सामाजिक मुक्ति का संघर्ष था' (4)।

अन्य संत कवियों ने भी स्त्रियों को समान अधिकार का संदेश दिया। कबीर ने कहा कि स्त्री-पुरुष भेद केवल शारीरिक है, आत्मा के स्तर पर सभी समान हैं।

सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष-संत कवियों ने विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों का भी विरोध किया। बाल-विवाह, सती-प्रथा, विधवा-विवाह निषेध, छुआछूत आदि कुप्रथाओं के विरुद्ध उनकी वाणी मुखर रही। कबीर ने पाखंडी साधुओं, स्वार्थी पंडितों और दिखावे के भक्तों की कटु आलोचना की।

दादू दयाल ने सामाजिक कुरीतियों को धर्म का नाम देकर चलाने वालों पर कठोर प्रहार किया। उन्होंने कहा कि सच्चा धर्म प्रेम और सेवा में है, न कि बाह्य प्रदर्शन में।

धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध संघर्ष-संत कवियों ने हिंदू और मुस्लिम दोनों धर्मों की कट्टरता का विरोध किया। उन्होंने यह स्थापित किया कि सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है - परमात्मा की प्राप्ति। कबीर ने कहा, 'हिंदू कहें राम हमारा मुसलमान रहमाना / आपस में दोउ लड़ि-लड़ि मुए मरम न कोउ जाना'।

रामविलास शर्मा ने संकेत किया है कि 'संत काव्य में साम्प्रदायिक सद्भाव और धार्मिक सहिष्णुता का संदेश प्रमुखता से मिलता है' (5)। गुरु नानक ने भी हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश दिया और दोनों धर्मों के श्रेष्ठ तत्वों को अपनाने की बात कही।

संत काव्य में जीवन-मूल्य

मानवतावाद-संत काव्य का केंद्रीय मूल्य मानवतावाद है। संतों ने मनुष्य को सर्वोपरि माना और मानवीय गरिमा की स्थापना की। उन्होंने यह घोषित किया कि मनुष्य जन्म से नहीं, कर्म से महान बनता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'संत साहित्य में मनुष्य की केंद्रीयता स्थापित हुई' (6)।

कबीर ने कहा, 'जाति-पाति पूछे नहीं कोई / हरि को भजे सो हरि का होई'। यह उक्ति सार्वभौमिक मानवतावाद का प्रतिपादन करती है। रैदास ने 'बेगमपुरा' की कल्पना की, जहाँ कोई भेदभाव नहीं होगा और सभी मनुष्य समान होंगे।

समानता का सिद्धांत-संत कवियों ने सामाजिक, धार्मिक और लैंगिक समानता का प्रबल समर्थन किया। उन्होंने यह स्थापित किया कि ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य बराबर हैं। कबीर ने कहा, 'एक बूँद एकै मल मूत्र एक चाम एक गदा / एक खन एक रक्त भोरा एकै पवन तुरीया'।

गुरु नानक ने 'इक ओंकारे' का सिद्धांत दिया, जो सभी मनुष्यों की समानता का आधार है। उन्होंने कहा कि सभी मनुष्यों में एक ही परमात्मा का अंश है।

सत्य और ईमानदारी-संतों ने सत्य को जीवन का सर्वोच्च मूल्य माना। कबीर ने कहा, 'साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप / जाके हिरदै साँच है ताके हिरदै आप'। गुरु नानक ने भी कहा कि सत्य के बिना मनुष्य का जीवन व्यर्थ है।

संतों ने व्यावहारिक जीवन में ईमानदारी और श्रमिक जीवन पर बल दिया। कबीर स्वयं जुलाहे थे और अपने श्रम से जीविकोपार्जन करते थे। उन्होंने कहा, 'ऊँचा ते ऊँचा मिले जो हरिजन परोपकारी / बेचत माल भजन मिले कबीर धन्य है भिखारी'।

प्रेम और करुणा-संत काव्य में प्रेम को सर्वोच्च भाव माना गया है। यह प्रेम केवल ईश्वर के प्रति नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के प्रति है। कबीर ने कहा, 'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय / ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय'। मीरा का काव्य प्रेम-भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। नंददलारे वाजपेयी ने लिखा है कि 'मीरा के काव्य में प्रेम की पराकाष्ठा देखने को मिलती है' (7)।

समानता और गरु भक्ति इन पदों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि संघर्ष नकारात्मक नहीं, बल्कि मूल्यों की स्थापना का साधन है। संत काव्य रहस्यवादी होने के साथ सामाजिक भी है।

सहिष्णुता और समन्वय-संत कवियों ने धार्मिक सहिष्णुता का संदेश दिया। उन्होंने विभिन्न धर्मों, संप्रदायों और मतों का सम्मान किया।

कबीर ने हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रचार किया। गुरु नानक ने भी समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। रामधारी सिंह दिनकर ने संकेत किया है कि 'संत साहित्य में सांस्कृतिक समन्वय की प्रवृत्ति प्रमुख रही' (8)। संतों ने योग, वेदान्त, सूफीवाद आदि विभिन्न दार्शनिक परंपराओं का समन्वय किया।

आत्मसाक्षात्कार और आत्मज्ञान-संत काव्य में आत्मसाक्षात्कार को परम लक्ष्य माना गया है। कबीर ने कहा, 'मोको कहाँ ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में / ना मैं देवल ना मैं मस्जिद ना काबे कैलास में'। इस उक्ति में आत्मज्ञान का संदेश निहित है।

संतों ने बाहरी खोज के स्थान पर आंतरिक खोज पर बल दिया। उन्होंने कहा कि परमात्मा बाहर नहीं, अपने भीतर विद्यमान है। यह आत्मसाक्षात्कार का मार्ग है।

संत काव्य की सामयिक प्रासंगिकता-संत काव्य परंपरा आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। आधुनिक युग में भी सामाजिक असमानता, धार्मिक कट्टरता, जातिवाद, लिंग-भेद और भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ विद्यमान हैं। संत साहित्य इन समस्याओं के समाधान का मार्ग दिखाता है। साम्प्रदायिकता आज भी देश की एक प्रमुख समस्या है। संतों का समन्वयवादी दृष्टिकोण इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है। कबीर और नानक की वाणी आज भी हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश देती है।

जातिवाद आज भी समाज को विभोजित करता है। संतों का समानता का संदेश इस विभाजन को समाप्त करने में सहायक हो सकता है। रैदास और कबीर की वाणी आज भी दलित चेतना को प्रेरित करती है।

स्त्री-शोषण आज भी एक गंभीर समस्या है। मीरा का जीवन और काव्य आज भी स्त्रियों को आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता का संदेश देता है।

भौतिकवाद और उपभोक्तावाद के इस युग में मानवीय मूल्यों का हास हो रहा है। संत काव्य में निहित सत्य, प्रेम, करुणा, सादगी और आत्मसंतोष जैसे मूल्य आज भी मार्गदर्शन करते हैं।

संत काव्य का साहित्यिक योगदान-संत काव्य ने हिंदी साहित्य को अनेक दृष्टियों से समृद्ध किया। सबसे बड़ा योगदान लोकभाषा को साहित्यिक माध्यम बनाना था। संतों ने संस्कृतनिष्ठ भाषा के स्थान पर जनसामान्य की भाषा को अपनाया।

संत काव्य में साखी, सबद, रमैनी, पद आदि काव्य रूपों का विकास हुआ। इन रूपों में गहन दार्शनिक चिंतन को सरल और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया।

संत कवियों ने बिंब, प्रतीक और रूपकों का सटीक प्रयोग किया। कबीर के बिंब और प्रतीक अत्यंत मौलिक और लोकजीवन से जुड़े हैं।

निष्कर्ष-संत काव्य परंपरा में संघर्ष चेतना और जीवन मूल्यों का सुंदर संतुलन है। पदों के विश्लेषण से पता चलता है कि संत कवि केवल विरोध नहीं करते, बल्कि एक नए मानवीय समाज की रचना करते हैं। कबीर का व्यंग्य, रैदास की समानता की कल्पना, नानक की करुणा आज भी प्रासंगिक हैं। यह परंपरा हमें सिखाती है कि सच्चा संघर्ष मूल्यों से परिपूर्ण होता है और मानव मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

संदर्भ सूची

1. शुक्ल, रामचंद्र। हिंदी साहित्य का इतिहास। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, २००८।
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद। हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९५२।
3. चतुर्वेदी, परशुराम। रैदास बानी संग्रह। लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८३।
4. मिश्र, बच्चन सिंह। संत काव्य: एक अध्ययन। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९९०।
5. उपाध्याय, काशीनाथ। दादू वाणी। राधास्वामी सत्संग, आगरा, १९८०।
6. सिंह, नामवर। भक्ति आंदोलन और संत काव्य। वाणी प्रकाशन, दिल्ली, २००५।